पर आँखें नहीं भरीं

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

९.४३१
त ६४१

राजकमल प्रकाशन

समादरणीय डा० रेग्मी के कर कमलों में

नेपाल प्रवास की मधुर स्मृति में

सादर और सस्नेह भेंट -

शिवमंगलसिंह सुमन

काठमाँडू
(नेपाल)
३१. ५. ६१

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय
९२६८

पर आँखें नहीं भरीं

पर आँखें नहीं भरीं

डॉक्टर शिवमंगलसिंह 'सुमन'

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

राजकमल
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली इलाहाबाद बम्बई

प्रकाशक :
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई ।

9205

मूल्य तीन रुपये आठ आने

डा. डिल्ला रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली ।

विषय-सूची

पर आँखें नहीं भरीं

१	मैं तुम्हें पहचानता हूँ	३
२	विवशता	४
३	विश्वास	६
४	और····और	७
५	कई बार	६
६	तीन चित्र	१२
७	मैं चलता जा रहा	१४
८	छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ	१७
९	हमें न बाँधो प्राचीरों में	१९
१०	गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं	२१
११	पर आँखें नहीं भरीं	२३
१२	आज रात-भर बरसे बादल	२५
१३	आज की साँझ सलौनी बड़ी मन भावनी री	२७
१४	शरद्-सी तुम कर रही होगी कहीं शृंगार	२९
१५	चाँदनी छाई, किसी की याद आई	३२
१६	टूटी डोर	३४
१७	मिट्टी की महिमा	३६
१८	फागुन में सावन	३८
१९	चेरापूँजी	४०
२०	तो बीत जायँगे ये दिन भी	४३
२१	अपने भी बन जाओगे	४६
२२	गान मेरा तुम्हारी कहानी बने	४८
२३	मृत्तिका का दीप	४९
२४	बात की बात	५१
२५	प्यार का सत्कार	५४

२६	मैंने तुमसे वरदान नहीं माँगा था	५६
२७	दूर हूँ जितना, तुम्हारे पास उतना ही	५८
२८	तुम मेरे स्वर में कम्पन बनकर आओ	६०
२६	क्षण-भर की पहचान	६२
३०	क्षणिक तूफ़ान	६४
३१	तुम्हारे स्नेह की दो बूँद	६५
३२	कलाकार के प्रति	६८
३३	कसौटी	७१
३४	पहले नहीं लिखा था	७३
३५	साँसों का हिसाब	७५
३६	मेरे गीतों को चलते-चलते गाओ	८०
३७	मरुथल और नदी	८२
३८	आश्वासन	८४

पर आँखें भरी-भरी

३६	युग-सारथी गांधी के प्रति	८६
४०	बापू के अन्तिम उपवास पर	९६
४१	महात्माजी के महानिर्वाण पर	९८
४२	महा प्रयाण	१०४
४३	तुम कहाँ शान्ति के सार्थवाह ?	१११
४४	वह चला गया	११३

अप्रतिहत संघर्षशील समाराधक साहित्य-सुधी-सुहृद
डॉक्टर श्री भगवतशरण उपाध्याय को
सादर और सस्नेह

पर आँखें नहीं भरीं

मैं तुम्हें पहचानता हूँ

पूर्व-परिचय भी नहीं था
आज भी हम हैं अपरिचित
ये अछूते अधर अपनी
मूकता में ही प्रकंपित

किंतु जब देखा तुम्हें
तो चेतना ने यह बताया
हाय, खोई वस्तु मैं
कितने दिनों में खोज पाया,

तुम न मानो, जग न माने
किंतु मन तो कह रहा है—
"मैं तुम्हें पहचानता हूँ"

विवशता

मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था!

गति मिली, मैं चल पड़ा,
पथ पर कहीं रुकना मना था।
राह अनदेखी, अजाना देश,
संगी अनसुना था।।

चाँद-सूरज की तरह चलता,
न जाना रात-दिन है?
किस तरह हम-तुम गए मिल,
आज भी कहना कठिन है।।

तन न आया माँगने अभिसार,
मन हो जुड़ गया था।
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था!

देख मेरे पंख चल, गतिमय,
लता भी लहलहाई।
पत्र-आँचल में छिपाए मुख-
कली भी मुस्कराई॥

एक क्षण को थम गए डैने,
समझ विश्राम का पल।
पर प्रबल संघर्ष बनकर,
आ गई आँधी सदल बल॥

डाल झूमी, पर न टूटी,
किंतु पंछी उड़ गया था।
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था!

विश्वास

हम तारों के नाते अम्बर के अपने हैं,
हम लहरों के नाते सागर के अपने हैं।
हम रज-कन के नाते धरती के अपने हैं,
हम जीवन के नाते जगती के अपने हैं।

क्या एक तुम्हारा ही बनने में इतना भ्रम ?
मृगतृष्णा की छलना क्या सचमुच सत्य परम ?
या प्रेय-प्राप्ति-पथ पर सपनों का निश्चित क्रम ?
पर व्यर्थ नहीं जाते संघर्ष-साधना-श्रम।

औरं....और

कहने की बातें और, किन्तु
मन की बातें कुछ और-और !

सोचा था जिस दिन सूने में,
सहसा तुमको मैं पा लूँगा।
कितने उलाहने उगलूँगा,
सब सपने सत्य बना लूँगा ।।
लेकिन जब तुम मिल जाते हो,
तो कहने लगता और-और।
कहने की बातें और, किन्तु
मन की बातें कुछ और-और !

8207
डा: डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

मधु ऋतु जिस दिन इतराई थी,
किसलय-कपोल की लाली में।
कोयल ने सोचा, कुहुकूँगी
अब लुक-छिपकर हरियाली में।।

लेकिन उसकी ही हूक
फिरी बौराई बन-बन बौर-बौर।
कहने की बातें और, किन्तु
मन की बातें कुछ और-और!

चंदा ने देखी परछाईं,
जिस दिन सागर की लहरों में।
सोचा, कल सजकर आऊँगा
रजनी के पिछले पहरों में।।

लेकिन जब लहरें लहराईं,
तो ठिठका फिरता ठौर-ठौर।
कहने की बातें और, किन्तु
मन की बातें कुछ और-और!

कई बार

कई बार टूटे-जुड़े तार सारे
तुम्हारे-हमारे।

घिरीं क्या घटाएँ
चलीं क्या हवाएँ
कि यौवन उमड़ता बहा जा रहा है
कगारा कि सपना ढहा जा रहा है ?
चला जा रहा धार की धार धारे
लहर के सहारे।

उठीं जल दिशाएँ
जलें या बुझाएँ

कि सोना निशा का गला जा रहा है
कि मोती उषा का ढला जा रहा है
मची लूट अब कौन किसको सँभारे ?
मलिन-मुख सितारे।

बनी बूँद धारा
कि सागर पुकारा ?
पहाड़ों के अन्तर अचानक हिले हैं
पिघलते हैं पत्थर कि सोते मिले हैं ?
इसी बेसुधी में गए खो किनारे
हुए सिन्धु खारे।

पपीहा है प्यासा
कि दिल का दिलासा ?
कि नादान मन का भरम धो रहा है ?
कि पहचानपन का मरम खो रहा है,
बहुत तो सहारे, बहुत तो सहारे
न आँसू बहा रे !

वो निकला सितारा
पथिक का सहारा
कि चंदा की आँखें तरस खा रही हैं
किसी का सँदेशा निकट ला रही हैं।
गगन जानता है लगन के इशारे,
न जीते, न हारे।

ये जलतीं शमाएँ
कि बिखरीं दुआएँ

पतिंगा बिचारा जला जा रहा है
कि दीपक का दामन छला जा रहा है
कि जलते हैं यों ही सनेही बिचारे
खुदी को बिसारे।

हिलीं यों लताएँ
कि ढाढ़स बँधाएँ
कि असमय सुमन-दल चुना जा रहा है
नया ताना-बाना बुना जा रहा है
मधुप गुनगुनाते रहे मन को मारे
कली के सहारे।

विमन मन मनाएँ
कि कविता बनाएँ
कि अंबर चुनौती मुझे दे रहा है
कि सागर मनौती लिये ले रहा है,
तनिक देर में तू कहाँ, मैं कहाँ रे?
रहेगा जहाँ रे!

तीन चित्र

गूँजे अवनी से अम्बर तक
कटि-किंकिए पग-पायल के स्वन
खुन खुनुन-खुनुन
रुन झुनुन-झुनुन

वह फूट पड़ा नभ का उद्‌गम
रिमझिम-रिमझिम
झमझम - झमझम
विकसे अंकुर, बिखरी सीपी
प्रतिध्वनित पपीहे की पी-पी

तरु-तरु हुलसित
रह-रह पुलकित
चिर-प्यासी धरती के कन-कन
सावन के दिन, सावन के दिन।

लहराती लघु-लघु लोल लहर
सरसर-सरसर
मरमर-मरमर
अणु-अणु हर्षित, तृण-तृण मुखरित
किसलय प्रमुदित, कलि-कलि कुसुमित
भ्रमरों की गुन-गुन से गुञ्जित
कोकिल-कूजित मेरा उपवन
मधुऋतु के दिन, मधुऋतु के दिन।

आँधी आई तूफ़ान प्रखर
झर-झर-झर-झर
हर-हर-हर-हर
लो उनके जीर्ण-विशीर्ण गात
टप-टप-टप टपके पात-पात
नंगे तरुगण, उजड़ा उपवन
सूना-सूना-सा नील गगन
पतझर के दिन, पतझर के दिन।

मैं चलता जा रहा

कितने पग चल चुका, कहाँ अटका-ठिठका डेरा डाला
कहना कठिन पार कर आया कितना तम औ' उजियाला
स्मृतियाँ ही बस शेष, टिकाऊ हो न सके पथ के परिचय
यौवन के सपनों को ठोस सत्य से आज पड़ा पाला

लेकिन साथी !
चलने का आनन्द और ही
गति का हर अभियान नया,
जान न पाए,
क्योंकि सुनाने वाला
चलता चला गया।

छाँह पैर धर लेती,
अधरों से झरने इठलाते हैं।
मैं चलता जा रहा
राह के दृश्य बदलते जाते हैं।

कितनी मूक उदास अँखड़ियाँ बाट जोहतीं खड़ी-खड़ी,
कितनी कलियाँ खिलीं झरीं, लतिकाएँ सिसकीं पड़ी-पड़ी,
कितनी बार अपनपौ छूटा, रक्त-पिपासित हुए स्वजन,
कितनी बार स्नेह-ममता की टूट गईं सब कड़ी-कड़ी।

लेकिन साथी !
पतझर, झंझा, लू-लपटों से
संयम औ' विश्वास हृदय का नहीं डिगा,
झुलसी धरती का अंचल फिर,
विधुर शून्य की करुणा धारा गई भिगा।

अँकुराए रज-कन,
कलि-अलि नत-नयन मचलते जाते हैं।
मैं चलता जा रहा,
राह के दृश्य बदलते जाते हैं।

नाते-रिश्ते परिजन-पुरजन सबको पीछे छोड़ रहे,
एक लगन, आगे बढ़ने की हरदम होती होड़ रहे,
मंज़िल पर है दृष्टि, नहीं दिखते कंटक, खाई, खन्दक,
गति में लगता साथ-साथ वन-उपवन-निर्झर दौड़ रहे।

लेकिन साथी !
साँसों-सा ही मैं विराम-हित
नहीं कहीं भी रुका-अड़ा,

पग या पथ दोनों में कोई
कभी पुराना नहीं पड़ा।
परिपाटी ही भिन्न,
यहाँ पंथी थकने पर गाते हैं,
मैं चलता जा रहा,
राह के दृश्य बदलते जाते हैं।

छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ

याद तो होगा तुम्हें वह दिन सलोना—
जब तुम्हारे द्वार पर आया अकेला,
शून्य नयनों में लगा था वेदना का मूक मेला।
एक ही मुस्कान से जब भर दिया तुमने हृदय का रिक्त कोना
याद तो होगा तुम्हें वह दिन सलोना ?
मैं उसी मुस्कान की आभा चुराकर
दिग्दिगंतों में लुटाने जा रहा हूँ।

याद तो होगा तुम्हें वह गान मनहर—
जो सुनाकर स्नेह का वरदान माँगा
पलक-पल्लव की अरुणिमा में मधुर मधुमास जागा।

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

गुनगुनाकर मंद सप्तक में तुम्हीं ने कर दिए झंकृत तरल स्वर
याद तो होगा तुम्हें वह गान मनहर ?
मैं उसी झंकार की मद-मूर्छना ले
चर-अचर सबको लुभाने जा रहा हूँ।

याद तो होगा तुम्हें वह मधु-मिलन-क्षण
जब हृदय ने स्वप्न को साकार देखा
मिट गई दुर्भाग्य के भी भाग्य की जब अमिट रेखा।
ढाल जब अनजान में तुमने दिये इन शुष्क अधरों में अमृत-कण
याद तो होगा तुम्हें वह मधु-मिलन-क्षण।
मैं उन्हीं दो-चार बूँदों के सहारे
विश्व-व्यापक विष बुझाने जा रहा हूँ।

हमें न बाँधो प्राचीरों में

हम पंछी उन्मुक्त गगन के
पिंजरबद्ध न गा पाएँगे,
कनक-तोलियों से टकराकर
पुलकित पंख टूट जाएँगे।

हम बहता जल पीनें वाले
मर जाएँगे भूखे-प्यासे,
कहीं भली है कटुक निबौरी
कनक-कटोरी की मैदा से।

स्वर्ण-शृङ्खला के बन्धन में
अपनी गति, उड़ान सब भूले,

बस सपनों में देख रहे हैं
तरु की फुनगी पर के झूले।

ऐसे थे अरमान कि उड़ते
नीले नभ की सीमा पाने,
लाल किरण-सी चोंच खोल
चुगते तारक-अनार के दाने।

होती सीमाहीन क्षितिज से
इन पंखों की होड़ा-होड़ी,
या तो क्षितिज मिलन बन जाता
या तनती साँसों की डोरी।

नीड़ न दो चाहे, टहनी का
आश्रय छिन्न-भिन्न कर डालो
लेकिन पंख दिये हैं तो
आकुल उड़ान में विघ्न न डालो।

पागल प्राण बँधेंगे कैसे
नभ की धुँधली दीवारों में।

गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं ?

दे दिए अरमान अगणित
पर न उनकी पूर्ति दी,
कह दिया मन्दिर बनाओ
पर न स्थापित मूर्ति की।
यह बताया शून्य की आराधना करते रहो—
चिर-पिपासित को दिया मरुथल, मगर निर्झर नहीं !
गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं ?

स्नेह का दीपक जलाकर
आह और कराह दी,
रूप मृण्मय दे, हृदय में
अमरता की चाह दी।

कह दिया बस मौन होकर साधना करते रहो—
'पा जिसे तू जी सका, खोकर उसे तू मर नहीं !'
गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं ?

गगन सीमाहीन, दुस्तर सिन्धु
परिधि अथाह दी,
आदि-अन्त-विहीन, मुझको
विषम-बीहड़ राह दी ।

कह दिया, अविराम जग में भटकते फिरते रहो—
कर प्रवासी दे दिया परदेश, लेकिन घर नहीं !
गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं ?

पर आँखें नहीं भरीं

कितनी बार तुम्हें देखा
पर आँखें नहीं भरीं।

सीमित उर में चिर-असीम-
सौंदर्य समा न सका

बीन - मुग्ध - बेसुध - कुरंग-
मन रोके नहीं रुका

यों तो कई बार पी-पी कर
जी भर गया छका,

एक बूँद थी किन्तु,
कि–जिसकी तृष्णा नहीं मरी।

कितनी बार तुम्हें देखा
पर आँखें नहीं भरीं।

कई बार दुर्बल मन, पिछली—
कथा भूल बैठा
हार पुरानी, विजय समझकर
इतराया, ऐंठा
अन्दर ही अन्दर था लेकिन—
एक चोर पैठा,
एक झलक में झुलसी मधु-स्मृति
फिर हो गई हरी।
कितनी बार तुम्हें देखा
पर आँखें नहीं भरीं।

शब्द, रूप, रस, गन्ध तुम्हारी—
कण-कण में बिखरी,
मिलन साँझ की लाज सुनहरी—
ऊषा बन निखरी,
हाय, गूँथने के ही क्रम में
कलिका खिली, झरी,
भर-भर हारी, किन्तु रह गई
रीती ही गगरी।
कितनी बार तुम्हें देखा
पर आँखें नहीं भरीं।

आज रात-भर बरसे बादल

साँझ ढली, नभ के कोने में
कारे मेघा छाए
ये विरहिन के ताप, काम के शाप
गरज, इतराए,
दीप छिपाए चली समेटे निशा दिशा का आँचल
आज रात-भर बरसे बादल।

अमराई अकुलाई, सिहरी नीम
हँस पड़े चलदल।
मुखरित मूक अटारी
शापित यक्ष हो उठे चंचल।

गमके मन्द्र मृदंग, बज उठी रिमझिम-रिमझिम पायल
आज रात-भर बरसे बादल।
खिड़की से झीनी-झीनी
बौछार बिखरती आई,
अनायास ही किसी निठुर की—
याद दृगों में छाई।
पानी बरसा कहीं, किसी की बहा आँख का काजल
आज रात-भर बरसे बादल।

आज की साँझ सलौनी बड़ी
मन भावनी री

ताल-तलैया भरे चहुँ ओर
झकोर हिलोर में डोलै हिया,
दूब की चादर फैली दिगंत लौं
मोर को शोर मरोरै जिया
आ रही काजर आँजे निशा
पुतली में घिरी घटा सावनी री,
आज की साँझ सलौनी बड़ी मन भावनी री।

आम की डाल पै झूले पड़े
चढ़ी पैंग, उतार में हूक उठै

आली, लपेट न आँचर में
मोरे जानी-अजानी-सी कूक उठै
डोर की ऐंठन, मातो करै मन
मान री मान मनावनी री,
आज की साँझ सलौनी बड़ी मन भावनी री।
आज अटारी पै छाई घटा
सई-साँझ लगी अनटूटी झरी
आज की रात को राम ही मालिक
लोनी लता पै गाज गिरी
छान की बान टपाटप चू रही
बोजु की कौंध डरावनी री,
आज़ की साँझ सलौनी बड़ी मन भावनी री।
भीजि गई देहरी पै खड़ी
बौछार की मार न जाय सही
पीपर-पात की घात लगी
कछु बात उठै पै न जाय सही
साज ही साज सिंगार को दीपक
आज पिया की है आवनी री,
आज की साँझ सलौनी बड़ी मन भावनी री।

शरद्-सी तुम कर रही होगी कहीं श्रृंगार

कांस-सी मेरी व्यथा बिखरी चतुर्दिक्
बाढ़-सा उमड़ा हृदयगत प्यार,
मेघ भादों के झमाझम झर रहे जो
शरद्-सी तुम कर रही होगी कहीं श्रृंगार
लुट रहा है
छुट रहा है
रुद्ध क्षुब्ध प्रवाह
जीवन-मुक्त अंतर्दाह
सुलगता आकाश, धरती पुलकमाना
आज हरियाली गई पथ भूल

हृत उमंगों का भला कोई ठिकाना
खो गई सरि, खो गए दो कूल,
तप्त अंतर में घुमड़ते तरलतामय प्राण
गल गए पाषाण
वर्ष - भर की वेदना सिमटी
कि लहराया अतल उन्मुक्त पारावार।

नील नभ - से स्निग्ध निर्मल केश
गूँथे जा रहे होंगे सँवार - सँवार,
पिस रही मेंहदी, महावर रच रहा,
तारिकावलि-चन्द्रिका को हो रही होगी सहेज-सँभार

मैं प्रतीक्षा-रत
धो रहा पथ—
हंसमाला मुक्त बन्दनवार,
शस्य चामर चारु, श्लथ शेफालिका का हार !

आ रही होगी उड़ाती नील अंचल
लोल लहरों का प्रशांत - प्रसार,
देखने को नयन-खंजन विकल चंचल,
वक्ष की धड़कन उभार-उतार।

जपा-कुसुमों में तुम्हारा आगमन आभास
सागर से बुझी कब प्यास ?
व्यर्थ चिन्ता, व्यर्थ क्रन्दन
अब रहस्य रहा न गोपन
रूप-परिवर्तन तुम्हारे अमर यौवन का सतत आधार।
एक इंगित के लिए ठहरे कुमुद बन
खिंच रहे हैं रजत-स्वर्णिम रश्मियों के तार

स्निग्ध शतदल के सुवासित मधुस्तरों में
हो रहे स्वच्छन्द भ्रमरों के लिए तैयार कारागार।

आज तन-मन में लगी है होड़
देखता अनिमेष पथ का मोड़,
दूर की प्रत्येक ध्वनि, प्रत्येक आहट
एक छलना, अचकचाहट
पूछती फिर-फिर विकल मनुहार,
कब पकेंगे धान ?
कर रहे स्वीकार पाटल कंटकों के स्नेह का आभार
फूटने को कोरकों से गान;
कब ढलेगी दूधिया-मुस्कान गंगा-तीर
जब घर-घर बनेगी खीर;

मन अथिर उद्भ्रांत
चाहता एकांत
भेंट जिससे कर सकूँ मैं उपालंभों का पुलक-उपहार।

चाँदनी छाई, किसी की याद आई

चाँद बड़भागी किसी की छवि-सुधा पीकर गया छक
आज दिन सो ले, जगेगी रात अपलक,
बिन्दु मन में सिन्धु की साधें समाई
चाँदनी छाई, किसी की याद आई।

रूप-किरनों की सँजोई निधि छिटक छाई धरा पर
एक मुख में सिमिट सब सुषमा गई भर,
आज अपनी सुध-बिसुध बनती पराई
चाँदनी छाई, किसी की याद आई।

विश्व अनुरागी तुम्हें पाकर विरागी बन रहा क्यों ?
खो गया तुममें उसे त्यागी कहा क्यों ?

भूति किसके हेतु अग-जग ने रमाई,
चाँदनी छाई किसी की याद आई।
आज तक पथ का अकेलापन कभी अखरा न इतना,
जागती आँखें सँजोतीं मधुर सपना,
लुट गई छिन में जनम-भर की कमाई
चाँदनी छाई किसी की याद आई।

टूटी डोर

कई दिनों से देख रहा हूँ तुम उदास हो,
आँखें सजल विनत सहमी-सी
खोई-खोई दृष्टि दूर की
भूला-भूला-सा अपनापन ।
मन भी बड़ी विचित्र वस्तु है
कभी पहुँच के बाहर हो जाता—
लहराती,
उन्मन उडड्डीना पतंग की
छिन्न डोर-सी
और हाथ में रह जाती है उलझी गुत्थी ।
इसे उड़ाना खेल नहीं है,

प्रखर वायु में
डोर साधना कठिन, कठिनतर
दाँव फँसाना
पेंच काटना
धूल धूसरित, गहन नीलिमामय
संभ्रम आ—का—श में ।
टूटी डोर लूटने वाले यहाँ बहुत हैं,
भीड़ खड़ी है,
लम्बे-लम्बे बाँस हाथ में
जल्दी टूटे,
यही मनाते साँस-साँस में,
कौन उड़ाने वाले ?
इससे उनको क्या है लेना-देना ?

मिट्टी की महिमा

निर्मम कुम्हार की थापी से
कितने रूपों में कुटी-पिटी
हर बार बिखेरी गई
किन्तु मिट्टी फिर भी तो नहीं मिटी
आशा में निश्छल पल जाए, छलना में पड़कर छल जाए
सूरज दमके तो तप जाए, रजनी ठुमके तो ढल जाए
यों तो बच्चों की गुड़िया-सी भोली मिट्टी की हस्ती क्या
आँधी आए तो उड़ जाए, पानी बरसे तो गल जाए
फ़सलें उगतीं, फ़सलें कटतीं लेकिन धरती चिर उर्वर है
सौ बार बने सौ बार मिटे लेकिन मिट्टी अविनश्वर है।
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है!

विरचे शिव, विष्णु, विरंचि विपुल
अगणित ब्रह्माण्ड हिलाए हैं
पलने में प्रलय भुलाया है
गोदी में कल्प खिलाए हैं

रो दे तो पतझर आ जाए, हँस दे तो मधुऋतु छा जाए
झूमे तो नन्दन झूम उठे, थिरके तो ताण्डव शरमाए
यों मदिरालय के प्याले-सी मिट्टी की मोहक मस्ती क्या
अधरों को छूकर सकुचाए, ठोकर लग जाए छहराए
उनचास मेघ, उनचास पवन, अम्बर अवनी कर देते सम
वर्षा थमती, आँधी रुकती, मिट्टी हँसती रहती हरदम
कोयल उड़ जाती पर उसका निश्वास अमर हो जाता है।
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है !

मिट्टी की महिमा मिटने में
मिट-मिट हर बार सँवरती है
मिट्टी मिट्टी पर मिटती है
मिट्टी मिट्टी को रचती है

मिट्टी में स्वर है, संयम है, होनी-अनहोनी कह जाए
हँसकर हालाहल पी जाय, छाती पर सब-कुछ सह जाए
यों तो ताशों के महलों-सी मिट्टी की वैभव-बस्ती क्या
भूकम्प उठें तो ढह जाए, बूड़ा आ जाए, बह जाए
लेकिन मानव का फूल खिला, जब से पाकर वाणी का वर
विधि का विधान लुट गया स्वर्ग अपवर्ग हो गए न्यौछावर
कवि मिट जाता लेकिन उसका उच्छ्वास अमर हो जाता है।
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है !

फागुन में सावन

आज कहाँ से फिर आ पहुँचा
फागुन में सावन !

सुबह उड़ी थी धूल
शाम को घिर आए बादल
बासन्ती रातों में बरसा
किन आँखों का जल
पतझर की नंगी डालों में पुलक उठा यौवन ।
आज कहाँ से फिर आ पहुँचा फागुन में सावन !

सोंधी-सोंधी मिट्टी महकी
गमक उठा उपवन

बिजली कौंधी आसमान में
धरती में सिहरन
होली में कजली गाने को फिर ललचाया मन ।
आज कहाँ से फिर आ पहुँचा फागुन में सावन !

हरियाली का स्वप्न
थिरकने लगा पुतलियों में
अलियों का उन्माद
कि शोखी आई कलियों में
तपन बिना क्या मूल्य तुम्हारा जीवन-धन रस-घन ।
आज कहाँ से फिर आ पहुँचा फागुन में सावन !

चेरापूँजी

मुक्त हृदय कर रहा यहाँ नभ व्यथा-विसर्जन ।
विश्व-भ्रमण-परिश्रान्त-क्लान्त-सुस्थिर-विथकित-मन ।।

जीवनदाता जलद वियोगी अन्तर्वासी ।
लौट रहे घर लुटे-लुटे-से पथिक प्रवासी ।।

छिन-छिन बरस रहे हैं बादल आड़े-तिरछे ।
उतर रहे यानों से डगमग-पग धर नीचे ।।

यह पर्वत-पर्यङ्क हरित मखमली सुहावन ।
घेरे खड़ें विमुग्ध इन्द्र सहचर जीवन-धन ।।

क्षितिज-छोर पर धुनी रुई की राशि छहरती ।
कहीं सिन्धु-हिल्लोल, धूप-सी कहीं सुलगती ।।

सिन्धु उफ़न चढ़ गया व्योम पर ज्वार विलोड़ित ।
व्योम धरा पर विहर रहा मिलनातुर, पुलकित ।।

अचल हृदय की गहराई-सी सुरमा घाटी ।[1]
फैली बाईं ओर स्नेह-सुख की परिपाटी ।।

गिरते मुशमाई-प्रपात[2] पाण्डवगए निर्भर ।
प्रिया द्रौपदी का बनवासी अन्तर उर्वर ।।

झर-झर निर्झर नाच रहे दे-देकर ताली ।
उतर गई है साथ-साथ नीचे हरियाली ।।

फैला दूर सुनामगंज का विस्तृत अंचल ।
झलक रहा जल-विरल बालकों का हँसमुख दल ।।

उपत्यका में विचर रहे स्वच्छन्द बलाहक ।
देख रहे जीवन-परम्परा होती सार्थक ।।

आर्द्र उच्छ्वसित उमड़-घुमड़, आया विह्वल मन ।
घेर-घेर घिर उठे मण्डलाकार गगन घन ।।

वृष्टि मूसलाधार घिस गए पर्वत मानी ।
यह जीवन की शक्ति हो गया पत्थर पानी ।।

कितना बरसे कौन ? लगी बाजी, ध्वनि गूँजी ।
विश्व-विजयिनी कामरूप की चेरापूँजी ।।

यहाँ पुष्करावर्त्तक मेघों का सिंहासन ।
होता सुविधाजनक यथाहित यह निर्वासन ।।

---

१. चेरापूँजी से ठीक नीचे सुरमा नदी की उपत्यका का प्रसार है, जिसमें सुनामगंज एक सब-डिवीज़न है ।

२. मुशमाई चेरापूँजी के ऊँचे करारे से गिरने वाले पाँच प्रपातों का समूह है ।

दक्षिण पार्श्व सघन द्रुमदल की पाटी सुन्दर।
फूट पड़ा नोआकोलोकाई[1] का अन्तर ।।

निर्मल शुभ्र-प्रपात अमर बलिदान विजनवर।
गुहा-गेह में सुघर लुप्त हो गई मुखर सरि ।।

जल-सीकर उड़ रहे धुएँ-से आहत-आकुल।
पुअ्रन-कंदरा[2] शून्य-आर्त्त-गृह-सी शंकाकुल ।।

अंबर-अवनी मुग्ध परस्पर पुलकन चुम्बन।
कुहरांचल में मेघ-मनुज करते आलिंगन ।।

भर-भर आते नयन, हृदय हो उठता गद्गद्।
कामद, तृष्णा-शमन-शील झर-झर पड़ता मद ।।

पता नहीं मेरे मन की आशा कि दुराशा ?
लौट रहा हूँ चेरापूँजी से भी प्यासा ।।

---

१. कालिकाई के जल-प्रपात के साथ एक दुःखात कहानी गुँथी है। कालिकाई एक निर्धन विधवा थी जिसने दुबारा विवाह कर लिया। दूसरा पति पहले विवाह की सन्तान छोटी लड़की से जलता था। एक दिन मौका पाकर उसने उसे मार डाला। कालिकाई को पता चला तो उसने इस स्थान पर से कूदकर प्राण दे दिए, जहाँ अब यह सुन्दर प्रपात है।

२. चेरापूँजी में चूने के पत्थरों की एक कन्दरा।

तो बीत जायँगे ये दिन भी

जब बीत गए वे दिन मेरे
तो बीत जायँगे ये दिन भी।

किस घाट बहा लाई मुझको
मेरे ही मन की अभिलाषा।
नयनों में सिन्धु लिये अब तक
यह मृगतृष्णा का मृग प्यासा।।

जिस ओर क़दम मैं रखता हूँ
दुर्दिन की बसती बस्ती है।
पर इस परिवर्तन के जग में
सुख-दुख की भी कुछ हस्ती है ?

जब-जब मन हो उठता उदास
कोई यह कहता रहता है—
जब हास अमर हो ही न सका
तो टिक न सकेगा क्रन्दन भी।

तन शिथिल, मलीन वसन मेरे
पथ के साथी सब तितर-बितर।
अब मेरा मन बहलाने को
आती स्मृति जब-तब सिहर-सिहर।।

तब से अब तक पथ पर कितने
पतझर भी मिले, वसन्त मिले।
पर मैं उस पथ का पन्थी हूँ
जिसका न आदि, ना अन्त मिले।।

जब-जब जीवन होता निराश
कोई यह कहता रहता है—
जब आज असीम बना बंदी
तो टूट जायँगे बन्धन भी।

निश्चित हैं मधुर मिलन के क्षण
निश्चित वियोग के व्यथित चरण।
है यहाँ अनिश्चित क्या जग में
जब निश्चित जीवन और मरण।।

जिस जगह झरी जीवन-डाली
उग उठे वहीं नव-नव अंकुर।
जिस जगह प्रलय की वह्नि प्रबल
हैं वहीं छिपे निर्माण-प्रहर।

कब मिली तृप्ति, कब मिटी प्यास
कोई यह कहता रहता है—
जो मिट्टी आज बनी जड़-सी
कल उसमें होगा स्पंदन भी ।

अपने भी बन जाओगे

तुम सपनों में आए हो तो
अपने भी बन जाओगे।

जो छलना बन आता है
वह प्राणों में पल जाता है,
जो आहों में उठता है
वह आँखों में ढल जाता है;
तुम ऊषा में बिछुड़े हो तो
संध्या में मिल जाओगे।

जो सागर में लहराया था
वह अंबर में बिखरा है,

जो आसमान में उमड़ा था
वह धरती पर निखरा है;
तुम बादल बन रोए हो तो
बिजली बन मुसकाओगे।

जो मँझधारों में मचली थी
वह फूलों से लिपटी है,
जो झोंपड़ियों में बिखरी थी
वह महलों में सिमटी है;
तुम अभिसारों में खोए तो
विप्लव में पा जाओगे।

जो अपने को ही दे डाले
वह ही सच्चा दानी है,
जो अनबोली रह जाती है
वह ही सच्ची वाणी है;
तुम कसकन बनकर सोए तो
धड़कन बन जग जाओगे।

तुम कुहरे में छिपते हो तो
किरनों में मुसकाते हो
तुम कन-कन में दिखते तो हो
पर हाथ नहीं आते हो;
तुम कंपन बन भागोगे तो
गीतों में बँध जाओगे।

गान मेरा तुम्हारी कहानी बने

स्नेह है तो जलन का सदा मान है;
चिर-प्रतीक्षा स्वयं एक वरदान है
अश्रु पलते रहें, छन्द ढलते रहें
स्वर व्यथा का कथा की रवानी बने।

पंथ है तो पथिक का सदा मान है
दूर मंजिल स्वयं एक वरदान है;
राह चलती रहे, छाँह ढलती रहे,
चिर-थकन में मगन प्यास पानी बने,

साध है, साधना का सदा मान है
मूक-आराधना एक वरदान है।
आह बढ़ती रहे, चाह चढ़ती रहे
मैं मिटूँ तो तुम्हारी निशानी बने।

मृत्तिका का दीप

मृत्तिका का दीप तब तक जलेगा अनिमेष
एक भी कण स्नेह का जब तक रहेगा शेष।

हाय, जी-भर देख लेने दो मुझे
मत आँख मीचो
और उकसाते रहो बाती
न अपने हाथ खींचो
प्रात जीवन का दिखा दो
फिर मुझे चाहे बुझा दो
यों अँधेरे में न छीनो
हाय, जीवन-ज्योति के कुछ
क्षीण कण अवशेष।

तोड़ते हो क्यों भला जर्जर रुई का जीर्ण धागा
भूलकर भी तो कभी मैंने न कुछ वरदान माँगा
स्नेह की बूँदें चुवाओ
जी करे जितना जलाओ
हाथ उर पर धर बताओ
क्या मिलेगा देख मेरा—
धूम्र कालिख वेष ।

शान्ति शीतलता-अपरिचित, जलन में ही जन्म पाया
स्नेह-आँचल के सहारे ही तुम्हारे द्वार आया
और फिर भी मूक हो तुम
यदि यही तो फूँक दो तुम
फिर किसे निर्वाण का भय,
जब अमर ही हो चुकेगा
जलन का सन्देश ।

बात की बात

इस जीवन में बैठे ठाले
ऐसे भी क्षण आ जाते हैं
जब हम अपने से ही अपनी-
बीती कहने लग जाते हैं

तन खोया-खोया-सा लगता
मन उर्वर-सा हो जाता है
कुछ खोया-सा मिल जाता है
कुछ मिला हुआ खो जाता है

लगता; सुख-दुख की स्मृतियों के
कुछ बिखरे तार बुना डालूँ

यों ही सूने में अन्तर के
कुछ भाव-अभाव सुना डालूँ

कवि की अपनी सीमाएँ है
कहता जितना कह पाता है
कितनी भी कह डाले, लेकिन
अनकहा अधिक रह जाता है

यों ही चलते-फिरते मन में
बेचैनी-सी क्यों उठती है ?
बसती बस्ती के बीच सदा
सपनों की दुनिया लुटती है ?

जो भी आया था जीवन में
यदि चला गया तो रोना क्या ?
ढलती दुनिया के दानों में
सुधियों के तार पिरोना क्या ?

जीवन में काम हज़ारों हैं
मन रम जाए तो क्या कहना ?
दौड़ा-धूपी के बीच
एक क्षण, थम जाए तो क्या कहना ?

कुछ खाली खाली होगा ही
जिसमें निश्वास समाया था
उससे ही सारा झगड़ा है
जिसने विश्वास चुराया था

फिर भी सूनापन साथ रहा
तो गति दूनी करनी होगी

साँचे के तीव्र-विवर्त्तन से
मन की पूनी भरनी होगी

जो भी अभाव भरना होगा
चलते-चलते भर जाएगा
पथ में गुनने बैठूँगा तो
जीना दूभर हो जाएगा

प्यार का सत्कार

तुम लुटा रहे हो आज प्यार बेमाँगे,
मैं सिहर रहा हूँ देख स्नेह के धागे।

बँधने में कुछ गौरव अनुभव करता हूँ,
पर बन्धन की फिसलन से मैं डरता हूँ।

मैं याद कर रहा वे बीती के सपने,
जिस दिन सहसा बन गए पराए अपने।

जब कलियाँ चटखीं थीं सरिता इठलाई,
चन्दा की चाँदी रेती पर छहराई।

जिस दिन चक-चकवी मार रहे थे शेखी,
जिस दिन सूरज में नई रोशनी देखी।

उस दिन की दूरी कितनी पास रही है,
अब सपनों पर मेरा विश्वास नहीं है।
तब मैं दोनों कर फैलाए फिरता था,
आँखों की पाँखों में मधु-चय करता था।
उस दिन तुम मुझको हँसकर टाल रहे थे,
मैं प्यासा, तुम औरों को ढाल रहे थे ?
मेरी विह्वलता मुझे सम्हाल रही थी,
वरना तुमने तो अपनी-सी कर ली थी।
उस दिन की जलन मुझे चौंका देती है,
मट्ठे को भी जो फूँक-फूँक पीती है।
अब भी मन लुटने को यदि ललचाएगा,
निश्चय ही वह फिर ठुकराया जाएगा।
इसलिए माँगना मैंने छोड़ दिया है,
मुँह माँगी थाती से मुख मोड़ लिया है।

मैंने तुमसे वरदान नहीं माँगा था

कुछ और समझ बैठे तुम मेरे स्वर से,
वरदान माँगती है दुनिया पत्थर से।
जो दे न सके कुछ किन्तु ले सके पूजन,
जिससे अतृप्ति का रहे सुरक्षित चिर-धन।

छू प्रथम रश्मि मानस-सरोज फूला-सा,
मैं नौसिखिया पथ पर भूला-भूला-सा।
मैं दिवा-स्वप्न-सा देख तुम्हें जागा था,
मैंने तुमसे वरदान नहीं माँगा था।

मैं अमर-पथिक परिवर्त्तन का विश्वासी,
जीवन मेरा अधिकार, अमरता दासी।

मेरे स्नेही पथ के कंकड़-पत्थर तक,
चल-चरणों पर बलिहार राह के कण्टक।

पग-पग बिखरे अरमान जहाँ मैं पाता,
उस पथ पर मैं कैसे अंचल फैलाता ?
मधु मिलन-प्रहर अनमोल जहाँ त्यागा था,
मैंने तुमसे वरदान नहीं माँगा था।

इस ओर मोह की हाट, रूप की माला,
उस ओर जली तब तक जौहर की ज्वाला।
'साधक, सिर सौंपो आज' सिहर उर बोला,
सागर ने की हुंकार, हिमाचल डोला।

लपटों की लाली में यौवन-श्री निखरी,
शूली में फूली कली, पंखुरी बिखरी।
पग बढ़े मुक्त, बन्धन कच्चा धागा था
मैंने तुमसे वरदान नहीं माँगा था।

दूर हूँ जितना तुम्हारे पास उतना ही

दूर का पंथी, मुझे सुधि का सहारा है,
इस सतत संघर्ष-पथ पर, बल तुम्हारा है।
मिट रहा हूँ, खप रहा हूँ, इस भरोसे पर,
श्वास तुम हो प्राण, केवल तन हमारा है।
रक्त-सीकर कंटकों में प्रगति के साथी,
तुम छलो जितना, अडिग विश्वास उतना ही।

गहन तम में, शोध पथ का नयन-तारा है,
एक पृथ्वी ही नहीं आकाश सारा है।
यह धुआँ तो ज्योति की पहली कहानी है,
जलन का वर्चस्व विद्युत् का इशारा है।

घिर-घुमड़ते मेघ तन की तपन के साक्षी,
द्रवित जितने प्राण, प्यास-हुलास उतना ही।

वह पथिक पीछे कभी जो पग न धरता है,
पा गए मंज़िल सभी, दम कौन भरता है ?
एक राही के लिए पर्याप्त इतना ही,
राह चलते मृत्यु पा जाना अमरता है।
चूर तन-मन पा गया यह सत्य जीवन का
जर्जरित जितना, निकट मधुमास उतना ही।

तुम मेरे स्वर में कंपन बनकर आओ

मैं गाऊँ रूखे गीत
सरस तुम कर दो,
नन्ही-नन्ही बूँदों से
मरुथल भर दो।
तुम बियाबान ऊसर में हरियाली-सी—
सिकता के सूखे होठ हरे कर जाओ !

मैं भरी दुपहरी जेठ
पथिक झुलसाया,
तुम पथ पर मुझको मिलो
बनो बट-छाया।

तुम लूक-लपट में मलय-पवन थपकी-सी—
मेरे निदाघ में सावन-घन-बन छाओ !

होठों पर पपड़ी
सूख गए निर्झर हों,
पंथी के पदतल
शूलों से जर्जर हों।
तुम मधुर-परस से संजीवन भरती सीं—
चलते रहने की अमर लगन भर जाओ !
तुम मेरे स्वर में कंपन बनकर आओ !

क्षण-भर की पहचान

क्षण-भर की पहचान
जगत् में जीने का सामान दे गई ।

पहले भी पथ था, पंथी थे,
पर पथ से अनुरक्ति नहीं थी,
बिना तुम्हारे इस जीवन से
मोह न था, आसक्ति नहीं थी ।

तुम क्या मिले कि अनजाने ही
मिलन-विरह का ज्ञान मिल गया,
जिऊँ किसी के लिए या मिटूँ?
गौरव मिला, गुमान मिल गया ।

सहसा फूट पड़ीं मानस में
जो सरिताएँ रुद्ध रही हैं,
और बहुत-सी बातें हैं
भाषा में जिनके शब्द नहीं हैं।

पाने की अभिलाष
स्वयं को खोने का वरदान दे गई।
क्षण-भर की पहचान
जगत् में जीने का सामान दे गई।

दीपक सहज, ज्योति जन-जन में
मिलना कठिन स्नेह की बाती,
स्वर्ग सुलभ हो सकता है
पर पाना कठिन राह का साथी।

जो दे ऐसी शक्ति कि
पग-पग आदि-अंत की सीमा नापे,
जिसकी छाया में
शूलों का भय, फूलों का मोह न व्यापे।

बिना तुम्हारे, दुर्बल मिट्टी की
महिमा उद्बुद्ध न होती,
जीवन-मरण, सतत-परिवर्त्तन
की सार्थकता सिद्ध न होती।

पग की प्रथम रुझान, पंथ में मिटने के अरमान दे गई।
क्षण-भर की पहचान, जगत् में जीने का सामान दे गई।

क्षणिक तूफ़ान

ज़िन्दगी तो मिल गई चाही कि अनचाही
इस सफ़र में तुम कहाँ से मिल गए राही?
ठीक है दो क्षण हमारे कट गए, लेकिन—
तार सुधियों के हमारे बट गए, लेकिन—
हर क्षणिक तूफान की छाया सँवरती है,
दो घड़ी की भेंट बरसों तक अखरती है।
आ गई मंजिल तुम्हारी जा रहे हो क्या?
और चलने के समय मुस्का रहे हो क्या?
आँख मुस्काए तुम्हारी बात तब जानूँ,
डगमगाती नाव की पतवार पहचानूँ।
खैर यह मुस्कान बाँधे ले रहा हूँ मैं,
साधना की साध साधे ले रहा हूँ मैं।

तुम्हारे स्नेह की दो बूँद

सलोनी सावनी सन्ध्या
सरस सपने भरी रातें
हज़ारों झंझटों के बीच में
दो प्यार की बातें—

कहाँ मिलतीं, कहाँ खिलतीं—
कली छू साँस की गरमी
ढुलकती लाज की ऊषा
लिये नीहार की नरमी,

घटाएँ कौंध के कुण्डल पहन
अभिसार को चलतीं,

कुहासे के धुँधलके में
किरन की आबरू खिलती।

कुमुद की हिल गईं पलकें
सितारे दे रहे साखी,
तुम्हारे स्नेह की दो बूँद
जीने को बहुत काफी।

मुकुल की मद-भरी पलकें
मिलाने से नहीं मिलतीं,
मिले हम-तुम, हमारी या—
तुम्हारी कुछ नहीं ग़लती।

कली खिल सोचती रह-रह
न खिलते तो भला होता,
हृदय मिल सोचते अहरह
न मिलते तो भला होता।

मगर मिलना न मिलना
हाथ में होता तो क्या होता ?
कठिन पाषाण की छाती
पिघल कर बन गई सोता।

निगोड़े प्यार के मनुहार की
मिलती नहीं माफी,
तुम्हारे स्नेह की दो बूँद
जीने को बहुत काफी।

लजाओ मत इसी से
भक्त के भगवान् पलते हैं,

इसीके आसरे दिन-रात
सूरज-चाँद जलते हैं।

सितारे टिमटिमाते, और
झरने फूट पड़ते हैं,
निशा के गूढ़-गुम्फित केश
सहसा छूट पड़ते हैं।

जलन की साधना संसार में
सस्ती नहीं होती,
मधुर-मुस्कान की कीमत
चुकाते आँख के मोती।

न जिसके आदि में है योग
अथवा अन्त में बाकी,
तुम्हारे स्नेह की दो बूँद
जीने को बहुत काफी।

कलाकार के प्रति

तुम क्या दिन-भर पोथी-पत्रा पढ़ते हो,
कैसे शिल्पी हो, मूर्त्ति नहीं गढ़ते हो ?
क्या कहते हो उपकरण नहीं मिलते हैं ?
फूलों-पत्तों में जितने रँग खिलते हैं
तिनकों-तिनकों में जो मोती ढलते हैं।
चन्दा-ग्रह-तारे ज्योति-बीज बोते हैं
ऊषा-संध्या जिनमें जगते सोते हैं।
जिसका चटकीलापन चपला में ढलता
जिसका मटमैलापन बहार में पलता।
जो सोनजुही में चुप-चुप फूल गया है,

जो चम्पक अपनी गमक उँड़ेल गया है,
चाँदी के झूले में जो झूल गया है।
जो थिरकन बनकर बिखर गया लहरों में
जो कसकन बन सिसका सूने पहरों में

जिससे गुलाब के गाल हुए शरमीले,
जिससे बेला की पलकों के दल गीले।
गेंदा के गुदगुद हाथ हो गए पीले
रजनी के कस-मस कंचुक ढीले-ढीले।
जो अरमानों का घूँघट पलट गई है
जा अँधियारे में डसकर उलट गई है,

वह सब समेट लो, और अभी है बाकी
बासी फूलों में भी सुगन्ध है साक़ी।
रूँधे कंठों में भी हैं कवि के गाने,
रूखे अधरों में भी हैं छिपे तराने।

वह जो खेतों की मेंड़ों पर सोया है
वह जो बजरों की बाली में खोया है।
वह जो लूला है, भूखा है, नंगा है
वह जो कोढ़ी है, अंधा, भिखमंगा है।

उसके भी दिल में हूक उठा करती है,
मौसम-बेमौसम कूक उठा करती है।
नीले, पीले, बैंगनी, हरे, मटमैले,
बिखरे हैं रंग-बिरंग कुसुम्भी थैले।
शिल्पी रंगों का यहाँ अभाव कहाँ है?
अंतर-अंतर में भेद-दुराव कहाँ है?

बिखरे जीवन के मुक्त स्वरों में बोलो
तुम अपने मन की गाँठ तनिक तो खोलो ?

जो कुछ समेटते हो वह तो सपना है
जो लुटा रहे हो वह केवल अपना है।

जब हाथ बिठा लोगे सौ-सौ साँचों में
कंचन पिघलेगा जब सौ-सौ आँचों में,

तब एक रेख का कहीं भराव भरेगा,
तब एक रूप का आकर्षण निखरेगा,

भपके से केवल एक बूँद छनती है
सारे जीवन में एक मूर्ति बनती है।

जो अंतर का सब मैल गला जाती है
युग के अरूप का रूप ढला जाती है

जिसमें सारी साधना समा जाती है
जो युग-युग का इतिहास बना जाती है

जिसमें स्वप्नों के रंग निखर जाते हैं,
कवि की छाती के दाग उभर आते हैं।

कसौटी

युग की कसौटी पर चढ़ी है
आज मेरी साधना।

जो लिख रहा हूँ आज मैं
जो दिख रहा हूँ आज मैं
उसमें अगर झलके न तुम
तो व्यर्थ सब आराधना।

जीवन अचिर त्यौहार है
जो कुछ अमर है, प्यार है
बस बात इतनी, प्यार का—
प्रतिकार पाना है मना।

जिसने न खुद को दे दिया
वह क्या मरा, वह क्या जिया
जो कुछ बना हूँ आज मैं
सरबस लुटाकर ही बना ।

पहले नहीं लिखा था

तुमने मन को क्या किया
कि मैं लिखता हूँ,
तुमने तन को क्या किया
कि मैं दिखता हूँ।
ये कैसे दाने भरे
कि मैं चुनता हूँ,
तुमने कैसे स्वर भरे
कि मैं सुनता हूँ।

मैं जो लिखता हूँ, चुनता हूँ, सुनता हूँ
उससे ही अपना जीवन-पट बुनता हूँ,
युग के पथ का पाथेय मौन गुनता हूँ।

तुमको पाकर सब लगता नया-नया है
तुमको छूकर पत्थर भी पिघल गया है
तुम मेरे सपनों में अहरह जगते हो
अलसाए दीपक की लौ-से लगते हो।

यह जो पलाश से उड़ता भुआ-भुआ-सा
यह जो प्रभात में उठता धुआँ-धुआँ-सा
यह सब लाली से उभरा है, उद्गत है,
यह सब डाली के पात-पात में रत है।
तुममें जो देखा पहले नहीं दिखा था,
जो तुम्हें सुनाया पहले नहीं लिखा था।

साँसों का हिसाब

तुम, जो जीवित कहलाने के हो आदी
तुम, जिनको दफना नहीं सकी बरबादी
तुम, जिनकी धड़कन में गति का वंदन है
तुम, जिनकी कसकन में चिर-संवेदन है,
तुम, जो पथ पर अरमान भरे आते हो,
तुम, जो हस्ती की मस्ती में माते हो।

तुम, जिनने अपना रथ सरपट दौड़ाया
कुछ क्षण हाँफे, कुछ साँस रोककर गाया,
तुमने जितनी रासें तानी-मोड़ी हैं
तुमने जितनी साँसें खींची-छोड़ी हैं

उनका हिसाब दो और करो रखवाली
कल आने वाला है साँसों का माली।
कितनी साँसों की अलकें धूल सनी हैं ?
कितनी साँसों की पलकें फूल बनी हैं ?
कितनी साँसों को सुनकर मूक हुए हो ?
कितनी साँसों को गिनना चूक गए हो ?
कितनी साँसें दुविधा के तम में रोईं ?
कितनी साँसें जमुहाई लेकर खोईं ?

जो साँसें, सपनों में आबाद हुई हैं
जो साँसें, सोने में बरबाद हुई हैं
जो साँसें साँसों से मिल बहुत लजाईं
जो साँसें अपनी होकर बनीं पराई।

जो साँसें साँसों को छूकर गरमाईं
जो साँसें सहसा बिछुड़ गईं, ठंडाईं,
जिन साँसों को ठग लिया किसी छलिया ने
उन सबको आज सहेजो इस डलिया में
तुम इनको निरखो, परखो या अवरेखो
फिर साँस रोककर उलट-पलटकर देखो

क्या तुम इन साँसों में कुछ रह पाए हो?
क्या तुम इन साँसों से कुछ कह पाए हो?
क्या तुम साँसों के स्वर में बह पाए हो ?
क्या इनके बल पर सब-कुछ सह पाए हो?

इनमें कितनी हाथों में गह सकते हो
इनमें किन-किनको अपनी कह सकते हो ?
तुम चाहोगे टालना प्रश्न यह जी भर
शायद हँस दोगे मेरे पागलपन पर।

कवि तो अदना बातों पर भी रोता है,
पगले, साँसों का भी हिसाब होता है ?
कुछ हद तक तुम भी ठीक कह रहे लेकिन
साँसें हैं केवल नहीं हवाई स्पंदन,
इनमें चिनगारी, नमी और कुछ धड़कन
जिससे चल पड़ता इस्पातों का स्यंदन,
यह जो विराट् में उठा बवंडर-जैसा,
यह जो हिमगिरि पर है प्रलयंकर-जैसा,
इसके व्याघातों को क्या समझ रहे हो ?
इसके संघातों को क्या समझ रहे हो ?
यह सब साँसों की नई शोध है भाई
यह सब साँसों का मूक रोध है भाई
जब यह अंदर-अंदर घुटने लगती हैं
जब ये ज्वालाओं पर चढ़कर जगती हैं,
तब होता है भूकंप शृङ्ग हिलते हैं,
ज्वालामुखियों के वक्ष फूट पड़ते हैं,
पौराणिक कहते दुर्गा मचल रही है,
आगन्तुक कहते दुनिया बदल रही है,
यह साँसों के सम्मिलित स्वरों की बोली
कुछ ऐसी लगती नई-नई अनमोली,
पहचान-जान में समय लगा करता है
पग-पग नूतन इतिहास जगा करता है
जन जन का पारावार बहा करता है
जो बनता है दीवार ढहा करता है
सागर में ऐसा ज्वार उठा करता है
तल के मोती का प्यार लुटा करता है !

साँसें शीतल समीर भी, बड़वानल भी
साँसें हैं मलयानिल भी, दावानल भी
इसलिए सहेजो इनको तुम चुन-चुनकर
इसलिए सँजोओ इनको तुम गिन-गिनकर
अब तक गफ़लत में जो खोया सो खोया
अब तक ऊसर में जो बोया सो बोया
अब तो साँसों की फ़सल उगाओ भाई
अब तो साँसों के दीप जलाओ भाई।

तुमको चन्दा से चाव हुआ तो होगा
तुमको सूरज ने कभी छुआ तो होगा
उसकी ठण्डी-गरमी का क्या कर डाला
जलनिधि का आकुल ज्वार कहाँ पर पाला।
मरुथल की उड़ती बालू का लेखा दो
प्यासे अधरों की अकुलाई रेखा दो।

तुमने पी ली कितनी सन्ध्या की लाली ?
ऊषा ने कितनी शबनम तुममें ढाली ?
मधुऋतु को तुमने क्या उपहार दिया था ?
पतझर को तुमने कितना प्यार किया था ?

क्या किसी साँस की रगड़ ज्वाल में बदली ?
क्या कभी वाष्प-सी साँस बन गई बदली ?
फिर बरसी भी तो कैसी कितनी बरसी ?
चातकी बिचारी फिर भी कैसे तरसी ?
साँसों का फौलादी पौरुष भी देखा ?
कितनी साँसों ने की पत्थर पर रेखा ?
जितनी भी साँसें पथ के रोड़े बिनतीं
हर साँस-साँस की देनी होगी गिनती

तुम इनको जोड़ो बैठ कहीं एकाकी,
बेकार गईं जो उनको कर दो बाकी।
जो शेष बचें उनका मीजान लगा लो,
जोवित रहने का सब अभिमान जगा लो।
मृत से जीवित का अब अनुपात बता दो,
साँसों की सार्थकता का मुझे पता दो।
लज्जित क्यों होने लगा गुमान तुम्हारा ?
क्या कहता है बोलो ईमान तुम्हारा ?
तुम समझे थे तुम सचमुच ही जीते हो ?
तुम खुद ही देखो भरे या कि रोते हो।
जोवन को लज्जा है तो अब भी चेतो
जो जंग लगी उसको खराद पर रेतो,
जितनी बाकी हैं सार्थक उन्हें बना लो
पछताओ मत आगे की रकम भुना लो।
अब काल न तुमसे बाजी पाने पाए,
अब एक साँस भी व्यर्थ न जाने पाए।
तब जीवन का सच्चा सम्मान रहेगा,
आने वाली पीढ़ी को ज्ञान रहेगा।
यह जिया न अपने लिए मौत से जीता
यह सदा भरा ही रहा न ढुलका, रीता।

मेरे गीतों को चलते-चलते गाओ

मैं स्वयं प्रकाश बना चलता आगे-आगे
भूले-भटको तुम अपना पथ पाओ,
पीछे-पीछे आने वाले ओ अनुरागी,
मेरे चरणों के चिह्न मिटाते आओ,
जिससे न अमरता की छलना मुझको बाँधे
मिट्टी की जय-जयकार मनाते जाओ,
मेरी ज्वाला से परिचित हो पाए हो तो
तुम भी अपना आकुल-अन्तर सुलगाओ,
जब-जब जीवन की ज्योति
मन्द पड़ती दीखे—
संघर्षों के उद्वेलन से उकसाओ

मेरे गीतों से आसमान कुछ झुक आए
आँखों-आँखों में बोल पड़े, शरमाए,
तन को धरती से जैसा धीरज मिलता है
मन को वैसा अवलम्ब गगन दे पाए।
चाँदी-सोने के ढक्कन से सच ढक न सके
मिट्टी की महिमा फूलों में मुसकाए
फसलों की कलँगी अम्बर में आभा भर दे
चन्दा-तारे सबके अपने बन जाएँ,
जीवन में जितना स्नेह
सँजो पाया तुमने
उसकी आभा में जलते-जलते गाओ

मेरे गीतों से सोए पंथी जाग पड़े,
जो उठ बैठे वे आगे पैर बढ़ाएँ,
प्रत्येक चरण में मंज़िल लिपटी फिरती हो
विश्वास-श्वास शीतल समीर बन जाए
विश्राम शाम की रंगीनी में घुलता हो
मधु-याम सितारों की गाथा दुहराए
हर मील चाँद का मुखड़ा बन मुस्काता हो
हर कोस ज्वार की लहरों-सा उफनाए।
तुम पथ पर अपने गीत रचो
गाओ थककर
औरों की गाथा नाहक मत दुहराओ।
मेरे गीतों को चलते-चलते गाओ।

मरुथल और नदी

मैं मरुथल हूँ इसलिए नदी का आकर्षण,
मैं सहज मुक्त माँगता तरलता का बन्धन।
मुझमें उभरे हैं ढूह, बबूलों की छाया,
तेरी छवि का संकोच दुकूलों ने पाया।
मेरे कण-कण को प्यास सदा सहलाती है,
मुझमें उड़ती है धूल कि तू लहराती है।
आँधियों बगूलों की मनुहार लपेटे हूँ,
तुझको भर लूं इतना विस्तार समेटे हूँ।
मुझमें अंकित बेडौल पगों की कर्मठता,
तुझमें शंकित मन की शफरी-सी चंचलता।

हर झोंके में उड़ती रहतीं मन की पर्तें,
मैंने ही गिरि को दी थीं सागर की शर्तें।

मेरे सूखे अधरों में एक कहानी है,
मैं रीझ गया इसलिए कि तुझमें पानी है।

तू बहती रहती है इसलिए जवानी है,
तेरे अन्तर की लहर-लहर लासानी है।

जो कुछ प्रवाह में सुलझ गया वह तेरा है,
जो कुछ बाहों में उलझ गया वह मेरा है।

जो कुछ अन्तर में भटक गया वह तेरा है,
जो कुछ अधरों में अटक गया वह मेरा है।

मैं गीला हो जाता हूँ भीग नहीं पाता,
इसलिए युगों से है मेरा-तेरा नाता।

जिस दिन मेरी तापित तृष्णा बुझ जाएगी,
मनुहारों की आधार-शिला ढह जाएगी।

गिरि-सागर की दूरी कितनी बढ़ जाएगी,
अपनी धड़कन का अर्थ न तू पढ़ पाएगी।

तेरी साँसों का सूनापन बढ़ जाएगा,
बीती बातों का मोल बहुत चढ़ जाएगा।

तेरे-मेरे सपनों को कौन सजाएगा ?
अंबर धरती से नाहक सिर टकराएगा।

आश्वासन

तुम नाहक पथ पर बिखराते हो दाने,
मैं भूल गया हूँ चुगना ठौर-ठिकाने
गुनगुना रहे हो जो जीवन के गाने—

उनका सुर मुझसे पीछे छूट गया है,
कर में अधपर ही प्याला फूट गया है
जैसे प्रभात का सपना टूट गया है।

लेकिन मुझसे इसलिए न रूठो साथी
मैं लुटने दूँगा नहीं तुम्हारी थाती,
बट लेने दो यह रूखी-सूखी बाती।

इसमें फिर से जन-मन का स्नेह ढलेगा
अवरोधों का हिमगिरि तपकर पिघलेगा
युग की गंगा का मुक्त प्रवाह बहेगा।

मैं धारा हूँ पीछे कैसे लौटूँगा
अपनी करनी अपने हाथों मेटूँगा
युग-शिशु को देकर जन्म गला घोटूँगा।

उस दिन जो मैंने तुमसे क़ौल किया था
बातों-बातों में मन का मोल किया था
युग के अभाव पर जीवन तोल दिया था।

मैं अब भी हूँ वैसा ही मन का मानी
मैं बहने दूँगा नहीं आँख का पानी
आश्वस्त रहो मुझसे मेरे सेनानी!

जिसने जन-ज्वाला का आभास दिया है
दुर्धर संघर्षों में विश्वास दिया है
जर्जर-जगती को नव इतिहास दिया है।

उसके हित मेरी प्रतिभा पूर्ण प्रखर हो
मानवता का यह अन्तिम विजय समर हो
पद्दलितों का पावन संकल्प अमर हो।

पर आँखें भरीं-भरीं

युग-सारथी गांधी के प्रति

(गाँधी जी की ७९वीं वर्षगाँठ पर—नोआखाली-यात्रा के समय रचित)

हे अमर कृती, दृढ़व्रती
शांति-समता के मुक्त उसास विकल,
दाम्भिक पशुता के खँडहर में
तुम जीवन-ज्योति-मशाल लिये
चल रहे युगों की सीमा पर धर चरण अटल।
पद-निक्षेपों का भार वहन
किसमें क्षमता सामर्थ्य शेष
दुर्गम-वन, पर्वत-प्रांत-गहन
गति का संयम, मन का साधन
रवि-चंद्र निरखते निर्निमेष।

तुम अप्रतिहत चल रहे
विघ्न-बाधाओं को कर चूर-चूर,
अधिकार कर्म का लिये
प्राप्तिफल-आशा से सर्वथा दूर।

मौलिक अभियान तुम्हारा यह, युग के कर्मठ !
डगमग-डगमग अहि-कोल-कमठ
नप गए तुम्हारे तीन डगों में नभ-जल-थल
नयनों में आत्म-प्रकाश प्रबल
जल गया निशा का अहंकार
तम तार-तार।

पलकें खोलीं,
खुल गए प्रभा के स्वर्ण-कमल,
हिल उठे अधर
मच गई दानवों में हलचल,
डोली सत्ता, सिंहासन थर-थर भू-लुण्ठित
चरणों पर स्वर्ण-किरीट-मुकुट
तुम वीतराग
दे दिया अपर को महायज्ञ का महाभाग,
सपनों को सत्य बनाने में सोते-जगते सब समय व्यस्त
रह गए स्वयंहित रिक्त-हस्त।

हे नीलकंठ,
पी गए गरल
हिंसा, ईर्ष्या, छल, दंभ, अंध-दानवता के
दूधिया हँसी
धो रही पाप मानवता के।
जन-जन कण-कण की व्यथा-कथा से

पल-पल मर्माहत जर्जर
छलनी हो गया हाय अंतर
ऊमस दावा लू-लपटों से, झुलसे प्राणी जब-जब तरसे
हे करुणाघन ! तुम कहाँ नहीं कब-कब बरसे ?
कलियाँ चटकीं, किसलय मरमर,
ऊसर उर्वर,
नवजीवन लाली, शांति-सुधामय हरियाली
बरसी भू पर
युगकी विभीषिका से तापित
मन की जड़ता से संतापित—
रूखा-सूखा जन-अंतर-पट,
तुम अक्षय वट,
शीतल छाया में सँजो रहे
मानव-महिमा का शुक्ति-मुक्तिमय मंगल घट,
आजानुबाहु,
कितने विकलांग अपंगों के अवलंब बने
कह वचन सुधा-सुख-स्नेह सने,
छिगुनी पकड़े चल रहा डगमगाता युग-पथ
दो डग में सिमट गए इति-अथ,
बर्बरता के कुत्सित पाशविक प्रहारों में
घनघोर महाभारत की चीख-पुकारों में—
सारथी,
तुम्हारी ही वल्गा का अनुशासन
उच्छृंखल चपल-तुरंगों को—
संयत कर सकने में समर्थ,
देखा न सुना ऐसा अनर्थ—

पाएगा गति निश्चय ही अर्जुन-सर्जन-रथ।
तुम पोंछ रहे भयभीत कपोलों के आँसू
दे रहे धरा-विधुरा को निर्भय अभय-दान
हिंसा की गहन तमिस्रा में—
बुझते दीपक को बाती को—
फिर जिला गए देकर अंतस् का स्नेह-दान।

नंगे फ़कीर,
नग्नता निरीहों की ढक दी
ले ढाई गज का धवल चीर
कितनी द्रोपदियों की लज्जा
ली भरी सभा में बचा, वीर !
दुर्मुख दुःशासन नत अधीर।
दिशि-दिशि में आह-कराह-हाय
आसुरी अनाचारों से फिर जर्जर विषण्ण युग-धर्म काय,
नर में नरत्व का नहीं भाव
नासूर बन गया, स्वार्थ, घृणा, कुत्सा, हिंसा का घृणित घाव
मनु की संतानों के आगे
श्रद्धा-माता छटपटा रही,
आहत-अन्तर के टुकड़ों को
लोहू से लथ-पथ आँचल में
फिर बीन-बीनकर जुटा रही,
पुरखों की संचित ममता पर
ओले बरसे, गिर गई गाज,
केवल तुम माता के सपूत
दे रहे दूध का मूल्य आज।
अपनत्व प्रेम का लगा दिया मरहम

क्षत-विक्षत अंगों पर,
राका के सपने बिछा दिए
सागर को क्षुब्ध तरंगों पर।
चिर-दग्ध उपेक्षित जीवन में—
शतदल का बिजना हाथ लिये,
मधु-मलय-वात बन तुम डोले,
हिंसक पशुओं के घावों को
नवनीत अहिंसा की उँगली से—
सहलाया हौले-हौले।

गौतम की शांत अभय-मुद्रा
मीठी मुस्कानों में भर-भर,
मृत को जीवित, दुर्धर्ष शत्रु को
मित्र बना डाला सत्वर,
गर्वोन्नत अंबर झुका दिया
भीता धरती के चरणों पर।
वाणी में वंशी सम्मोहन
किल गया कालिया नाग
झूमता ऐरावत
युग-कर-वंदन में वशीकरण,
श्रमशील भगीरथ,
आज न होता तपःपूत तुम-सा,
खो जाता जग अपनी जड़ता के संभ्रम-सा।

मनु की संतान सगर-सुत-सी
सिकता में हो जाती विलीन
जर्जर पद्दलिता दीन-हीन।
सारी संसृति बनती मसान।

घर-घर उलूक, कौवे, शृगाल
जन-पथ भयावने बियाबान
चट-चट-चट चिता सुलगतीं
गिरते कंकालों पर गिद्ध-श्वान,
खप्पर भर-भर योगिनी
अँतड़ियाँ पहने करतीं रक्त-पान ।
तुम थे जो स्वर्ग उतार सके पृथ्वी पर
जन-गंगा-प्रवाह,
तुम थे जो मथ-मथ सिंधु,
सुधा दे गए, पी गए—
विष-बड़वानल-जलन-दाह ।
मेरे दधीचि.
तुम बार-बार अस्थियाँ लुटाने को आतुर,
ऐश्वर्य-मान-पद-मोह छोड़,
जन-जन के लिए विधुर कातर,
हिल्लोलित क्षुभित महासागर में
आशा के कमनीय सेतु,
तुम क्रुद्ध गरुड़ की तृप्ति-हेतु—
जीमूत-वाहिनी आत्म-दान
नागों का भी कर रहे त्राण,
है निशा-दिवा का एक मान
कोई अपना न पराया
मुक्तात्मा की गरिमा भासमान ।
तुम मूर्त्तिमान विश्वास अमर
युग की विराट् चेतना तुम्हारी श्वास-श्वास में रही सिहर ।
ऋत्विज,
कब यज्ञ-विधान तुम्हारा व्यर्थ हुआ ?

साधना तुम्हारी कब निष्फल ?
तुम जीवन की निर्मल परंपरा के वाहक
गंगा की कल-कल ध्वनि अविकल
तुम अपने में ही पूर्ण, सिद्ध, शाश्वत-संबल ।

बापू के अन्तिम उपवास पर

तुम शान्ति-स्नेह-समता प्रसार,
तुम मिट्टी की वासना लिये सीमाओं का करते विचार,
मानव होने के नाते मन उद्विग्न हो रहा बार-बार।
तप-तेज प्रभा-मंडल प्रकाश
दृग चकाचौंध, विद्युत्-विलास
कंचन-काया में तप्त, द्रवित
कल्मष-विहीन सौन्दर्य-वास।
चल रही विराम-यष्टि सँग-सँग
झलकता तपे ताँबे-सा रंग,
अधरों पर निर्मल मुक्त हास
अंबुधि की लहरों का हुलास

कटि में मेखला समय-सूचक
छाती की धड़कन-सी धक्-धक्
कह रही मौन, 'यह यती विरत
फिर रहा विश्व के प्रांगण में
वाणी-विचार-करनी संयत ।'

तुम दीपमुक्त जलती बाती
जन-जन की आज बने थाती,
अंतःसलिला-सा स्नेह तुम्हारा
हृदय-हृदय में उमड़ बहा
अपनी मिट्टी की संज्ञा पर
अधिकार तुम्हारा नहीं रहा,
अतएव तुच्छता पर मानव की—
कृतसंकल्प, न मिटो, खपो,
हे बोधिसत्त्व ! इतना न तपो ।

महात्माजी के महा निर्वाण पर

क्या सुना आज इन कानों ने
मेरे बापू तुम नहीं रहे ?
युग-युग के बापू नहीं रहे ?
जन-जन के बापू नहीं रहे ?

विश्वास नहीं होता सचमुच
उर की धड़कन कहती रुक-रुक
जब तक ऊसर हैं पग-पग में
हिमगिरि कैसे ढह सकता है ?
जब तक अँधियारा है जग में
दिनकर कैसे बुझ सकता है ?

जब तक दुर्योधन घर-घर में
चिर-सत्य-अहिंसा-व्रती रथी
पथ पर कैसे रुक सकता है ?
यह पहला अवसर जब कि
सत्य भी छलना बनकर छलता है,
तुमको पाना खोना दोनों
अद्भुत सपना-सा लगता है।
तुम देही कब थे देव !
सदा उन्मुक्त तुम्हारी हस्ती थी
हे अमर-ज्योति मिट्टी तुमको
कब तक बाँधे रख सकती थी
तुम कहाँ नहीं हो आज
खेत-खलिहान-महल-झोंपड़ियों में,
गृह-गृह में, अन्तर-अन्तर में
अविरल आँसू की लड़ियों में
दिक् में दिगन्त में व्याप्त
सूर्य-शशि-तारक-द्युति-फुलझड़ियों में
तुम बिखर गए मेरे विराट्,
ब्रह्माण्ड - विकास - विवर्त्तन में
तुम निखर उठे चिरज्योतिर्मय—
क्षेत्रज्ञ, चेतना चेतन में
सहसा सिहरन-सी दौड़ गई
कण-कण अणु-अणु के स्पन्दन में
हे पिता, तुम्हीं ने हम सबको
गति दी, जीवन का ज्ञान दिया

हँस-हँस स्वतन्त्रता की वेदी पर
मिटने का अभिमान दिया।
युग-युग से शोषित मानवता की
मुक्ति-हेतु आह्वान किया,
समता-स्वतन्त्रता-शान्ति-स्नेह हित
जीवन तक बलिदान किया
दलितों की आर्त्त गुहारों पर
घर-घर दौड़े, आँसू पोंछे
क्या-क्या न सहा, क्या-क्या न किया ?

तुमने झकझोर जगाया पर
युग को जड़ता न हिली, न डुली,
जब तुम आए मुँद गई पलक
जब चले गए तब आँख खुली
पी गए हलाहल जिससे
सदियों तक जग अमृत पिया करे,
दे गए आयु बाकी
जिससे मानवता युग-युग जिया करे।
जो राह न अब तक देखी थी
वह हमें सहज ही दिखा गए
जीकर जीना सिखलाया था
मरकर मरना भी सिखा गए।
दाता, देते ही रहे सदा
बदले में कभी न कुछ चाहा,
जगती का दाह मिटाने में
आजीवन अपने को दाहा।

पर हमने अपने ही हाथों
अपना अवलंब उजाड़ दिया
विष घोला शान्ति-सरोवर में
ममतालु कलेजा काढ़ लिया
तुम फिर भी करते क्षमा गए
हतभाग्य कलंकी पूतों को
जीवन-भर करते पूत रहे
हम-जैसे पतित अछूतों को
किन अभिशापों के बदले में
भोली मानवता छली गई
ऐसा लगता है साथ तुम्हारे
क्षमा, दया भी चली गई।
दिन-रात हमारी छाया से
युग की संस्कृतियाँ भागेंगी
आने वाली पीढ़ियाँ
हमीं से इसका उत्तर माँगेंगी
उत्तर केवल, अनुताप, लांछना
घृणा, दहकती छाती पर,
उत्तर केवल अभिशाप, व्यंग, विद्रूप
पितामह - घाती पर।
वह मानवता का पाप-पुञ्ज
कल्मष-भागी,
वह नहीं व्यक्ति जिसने
तुम पर गोली दागी,
वह उस परम्परा का जिसमें
रावण, नीरो औ' कंस हुए,

जिसमें दुर्योधन, हिरणाकश्यप
औ' ज़ारों के वंश हुए ।
मैं नाम नहीं लूँगा उसका
वाणी कलुषित हो जाएगी,
लेखनी मुझे धिक्कारेगी
जिह्वा कटकर गिर जाएगी
जिस पामर क्रूर कसाई पर
थूकेंगी सदियों पर सदियाँ
जिसके कारण इस देश-जाति को
घृणा करेगी सब दुनिया।
जिसको भेड़िए न खाएँगे
गिद्धों की दृष्टि न देखेगी
जिसके वर्णों पर माताएँ
शिशुओं के नाम न रक्खेंगी
क्या कहूँ कि हम सबके रहते
कैसे यह घोर अनर्थ हुआ,
बलिदान शहीदों के लज्जित
आज़ादी मिलना व्यर्थ हुआ।
आश्चर्य पितामह की हत्या
कैसे सह ली तरुणाई ने ?
हम खड़े देखते रहे
और गो-वध कर दिया कसाई ने
कायरता है कहना, होता है
जो हरि-इच्छा होतो है
यह वध मानवता को
पशुता की सबसे बड़ी चुनौती है

यह वध है शान्ति, अहिंसा,
श्रद्धा, क्षमा, दया, तप, समता का
यह वध है करुणामयी—
सिसकती दुखिया माँ की ममता का।
यह वध है उन आदर्शों का
जिन पर मानवता बिकी हुई,
यह वध है उन उत्कर्षों का
जिन पर यह दुनिया टिकी हुई
यह वध, संस्कृति के मूर्तिमान
आराधक औ' अधिकारी का
कुछ साधारण वध नहीं
विश्व के सच्चे प्रेम-पुजारी का।
यह वध है पुण्य-प्रसू धरती की
परम-पुनीता सीता का
यह वध युग-युग के काल-पुरुष का
वासुदेव का, गीता का।
अब भटको तम में सदियों तुम
दीपक की ज्वाला रूठ गई
ओ धर्म धुरीणो, होश करो
अब धुरी धर्म की टूट गई।

महा प्रयाण

ढल गया सूर्य, गल गया चाँद
तारे डबबड, धूमिल उदास,
लुट गया हिया, बुझ गया दिया
जिससे घर-घर में था प्रकाश ।

खो गई ज्योति जीवनदायी
विधवा-सी विह्वल पड़ी मही,
लग रहा आज, जैसे,
अब दुनिया रहने लायक नहीं रही ।

जनपद उजाड़, सुनसान,
सियारों की सुन पड़ती हुआ-हुआ

तुम नहीं जले, मानवता की—
जल गई चिता, रह गया धुआँ ।
अब कहाँ शरण ?
हमको अपनी ही काली छायाएँ घेरे,
तुम कहाँ आज ?
हे राम, मुहम्मद, कृष्ण, बुद्ध, ईसा मेरे ।

वे कहाँ बोल ?
जिनके सँग झंकृत मंद्र-मधुर
वीणा-वादिनि के तार-तार,
सचराचर जाता डोल-डोल ।

शब्दों-शब्दों में सत्य-शोध
स्वर-स्वर से भरती सुधा-धार,
उन्मुक्त विहग करते कलोल ।
जीवन का विष जल-जल जाता
घुल-घुल बह जाता व्यथा-भार,
साधना-सिद्धि बनती अमोल ।
वे कहाँ हाथ ?
जिनकी छाया में कोटि-कोटि दुखिया अनाथ
जीवन-आशा-विश्वास प्राप्त करते, पल में होते सनाथ
हिंसा-ईर्ष्या-छल-दंभ रूप दुर्योधन से
जिनके बल पर लड़ सके पार्थ ।
नयनों की पलक-पँखुरियों से झरता पराग
अबलाएँ फूट-फूट रोतीं
करुणा-जल में आँचल धोतीं
पा जातीं फिर शिशु की ममता, बिखरा सुहाग ।
वे कहाँ श्रवण ?

जो सोते-जगते सदा सजग
सुनते विराट् की धड़कन का आह्वान सुभग ।
पल-पल अकुला-अकुला उठते, मर्माहत अंतर, क्षुभित प्राण
सुन-सुन पीड़ित का आर्त्तनाद, मानवता का क्रंदन महान !
वे कहाँ चरण ?
जो जहाँ कहीं सुनते पीड़न-दुख-दैन्य-दाह,
सुध-बुध खोए दौड़े जाते
विह्वल बाँहों में लिपटाते
थकते न कभी
रुकते न कभी
पी लेते मधु-मुस्कानों से जन-जन की व्यथा कराह आह,
फेरतें हाथ घावों पर, सहलाते अंतर
बस, स्पर्श-मात्र से नव-संजीवन देते भर !
वह कहाँ मुक्त-मुस्कान ?
कि जिसकी आभा में खिलती कलियाँ
हँसते प्रसून,
विक्षुब्ध सिंधु होता प्रशांत
तूफ़ान ठिठक जाते, झंझानत—
पद-रज लेती चूम-चूम,
सत्-चित्-आनन्दमयी आकृति
रवि-चन्द्र और तारक-दीपक जिसकी अनुकृति,
खो गई कहाँ ?
सो गई कहाँ ?
बाहर-भीतर सब अंधकार,
विकराल काल-सा मुँह खोले

फुफकार रहा तम दुर्निवार !
तुम कहाँ आज हे कोटिबाहु
हे कोटिपाद, हे कोटि नयन,
युग की विभीषिका भेद पुनः—
कर दो विकीर्ण तम-हरण-किरण,
तुम, जो आए थे धरती पर युगधर्म-रूप
श्रद्धा से संचालित काया, आभा अनूप,
क्षेत्रज्ञ, कर गए कर्म-क्षेत्र को चिर-पावन
तुम, जो निर्भय हँसमुख, विनीत
चलते-चलते, कर जोड़ सहज
दे गए मृत्यु को नव-जीवन ।
बरसो जन-जन के अन्तर में हे ज्योतिर्मय,
—तुम जहाँ कहीं भी हो—
बनकर आशीष-वचन,
विचरो मानवता के पावन-मानस में
अशरण-शरण-तरण,
दे दो अपने अनुरूप नई संस्कृति को
नव-विश्वास-सृजन ।
हे शक्तिस्रोत !
कर दो हमको अपनी आभा से ओत-प्रोत,
हम वे अंकुर,
जिनको तुमने मिट्टी की जड़ता तोड़-फोड़
जोता-गोड़ा
बोया-सींचा
करुणा के श्रम-जल से पसीज
वे अमर बीज

जो उगे तुम्हारे तप की गर्मी से तप कर
जाड़ा-गर्मी-बरसात झेल अपने ऊपर
देखिए अपरिमित स्नेह घना,
जिनको पनपाने की धुन में, तुमने जीवन के—
सुख-दुख को सुख-दुख न गिना।

जो सदा फले-फूलें-फैलें मन में विचार
घर-बार छोड़ कुटिया धाई
ऋद्धियाँ सिद्धियाँ ठुकराईं
जगते-ही-जगते बिता दिया जीवन सारा
हो गई धन्य धरती पा ऐसा रखवारा।

तुमने चाहा, डालों-डालों पर
शीतल-सघन-वितान तने
ऐसा विशाल वट-वृक्ष बने,
जिसकी छाया में युग-युग तक
जीवन-यात्रा से चूर, थके-माँदे पंथी खोएँ थकान
भूले-भटकों को राह मिले
नव-आशा, नव-उत्साह मिले
मंजिल पाने की मूल प्रेरणा की उठान।
जीवन का शाश्वत बिरवा यह
पथिकों के लिए फले फूले,
आँधी-पानी-उल्का-तूफान-बवण्डर में
सिहरे न डुले
जड़ तक न हिले
इसलिए बन गए स्वयं खाद।
सदियाँ बीतें, युग-कल्प मिटें
मानवता कभी न भूलेगी

हे माली, यह उत्सर्ग मूक बलि हो जाने की अमर साध,
यदि हम हैं देव, तुम्हारे ही जोते-बोए-सींचे अंकुर,
यदि हम में देव, तुम्हारी ही मिट्टी की संचित शक्ति मुखर

तो बापू, हम निर्द्वंद्व
तुम्हारे आदर्शों की छाया में
यह दीपक सत्य-अहिंसा का
पल भर न कभी बुझने देंगे
विश्वास-प्रेम की वेदी पर
झण्डा न कभी झुकने देंगे,
जब तलक रक्त की एक बूँद भी
शष हमारी काया में।

कालीदह के कालिया नाग को हम नाथेंगे, कुचलेंगे
जहरीले दाँत उखाड़ सिन्धु की लहरों में लय कर देंगे
हम अनाचार-हिंसा-बर्बरता से कर देंगे मुक्त मही
कहने-सुनने को भी न मिलेंगे आस्तीन के साँप कहीं।

बापू हम लेते शपथ
तुम्हारे सत्य-प्रेममय जीवन की
अन्तिम आहुति के क्षण में
बिखरे उष्ण रक्तमय चन्दन की
हत्यारे के प्रति क्षमाशील
उन्मुक्त हृदय अभिनन्दन की।

हम एक आन पर कोटि-कोटि
प्राणों की भेंट चढ़ाएँगे,
सपनों को सत्य बनाएँगे,
भाई-भाई न लड़ेंगे अब
बिछुड़ों को गले लगाएँगे

हम अन्धकार की छाती पर
नव-जीवन-ज्योति जलाएँगे।

रावण का कारण-बीज नष्ट करने को उद्यत वसुन्धरा,
मिट नहीं सकेगी शान्ति-स्नेह-समता की निर्मल परम्परा।

तुम कहाँ शान्ति के सार्थवाह

हे ज्योतिवाह,
    हो गए अस्त, युग का विकाल
    किस महायज्ञ का रक्त-दान
    आक्षितिज महाम्बुधि हुआ लाल,
    अकुलाई अचला भक्ति मौन
    शिव शक्ति हीन, करतल पर मुख, झुक गया भाल।
    मरुतों की आभा क्षीण, वरुण हतप्रभ अस्थिर
    उद्विग्न, क्षुब्ध, कर रहे तराजू के पलड़ों को इधर-उधर।
    यम निष्प्रभ, नचिकेता के
    प्रश्नों को दुहराते बार-बार,
    अनुत्तरित रह गए

स्वर्ग-भू की सीमा के आर-पार।
दिग्बधुओं का मुख तमाच्छन्न
झुक गया व्योम, अवसन्न खिन्न।
लुट गई विश्व की श्री, सुषमा, उजड़ा सुहाग
खो गया प्रतीची के कल्मष में प्राची का अनुराग-राग
पथ पंकिल, पग-पग रक्त-स्नान
सूझता पसारे नहीं हाथ।
रुक गया कारवाँ, स्नस्त-त्रस्त
हिंसक पशुओं से भरी राह,
मानवता कातर, अश्रु-सिक्त
हिचकी ले-ले भर रही आह
तुम कहाँ शांति के सार्थवाह ?

प्रयाग
गांधी-अस्थि-विसर्जन
१२ फरवरी '४८

वह चला गया

जिसने हमें जीवन दिया सोते से जगाया
जिसने अँधेरी रात में पथ हमको दिखाया
जिसने हमें हैवान से इन्सान बनाया
आज़ाद बनाया
आबाद बनाया
वह शांति-अहिंसा का पुजारी चला गया
वह चला गया ।

जन-जन के लिए जिसने अमर जोत जलाई
घर-घर अलख जगाता फिरा, धूनी रमाई
दिन-रात परखता रहा जो पीर पराई

मां-बाप अनाथों का
दीन-हीन का भाई
वह सत्य-प्रेम-क्षेम भिखारी चला गया
वह चला गया
बिछुड़े हुओं को फिर से जो गले मिला गया
जीवन लुटा के अपना युगों को जिला गया
खुद पी लिया ज़हर, हमें अमृत पिला गया
भटके न अन्धकार में
पन्थी नया - नया
अपने हृदय के स्नेह से दीपक जला गया।
वह चला गया।

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय
9282

1ea. 639 4
(2) ab